श्री

सिद्ध पूजन

रचयिता

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

sarvodayahinsa@gmail.com 9785999100 /Sarvodayaahimsa

(दोहा)

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

(वीरछन्द)

ज्यों-ज्यों प्रभुवर जलपान किया, त्यों-त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा-तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणों में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय
जलं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

तन का उपचार किया अबतक, उस पर चंदन का लेप किया।
मल-मल कर खूब नहा करके, तन के मल का विक्षेप किया।।
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन-सम है पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय
चन्दनं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्व: सर्वत्र नन्दतु

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल संन्यासी हो॥
ले शालिकणों का अवलम्बन, अक्षयपद! तुमको अपनाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के वैरी की, क्यों नहिं आनन्द बढ़े सब का॥
प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है।।
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय
नैवेद्यं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़-चेतन-सर्जन करता है।।
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेद-ज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय
दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं।
मैं हूँ अखण्ड चित्पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
यह धूप नहीं, जड़-कर्मों की रज आज उड़ाने मैं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय
धूपं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

शुभ-कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उनमें समा रहा।।
रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश सब जगभर से, अब सिद्ध-शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये
फलं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की।।
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया।।
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुम को लख यह सद्ज्ञान हुआ।।
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपीमीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

जयमाला

(दोहा)

आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्मप्रकाश।
आनन्दामृत पान कर, मिटे सभी की प्यास॥

(पद्धरि)

जय ज्ञान मात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड॥
रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द्व निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार॥

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभु शिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार॥
प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थ भान, शिवपद दाता जो तत्त्वज्ञान॥

पाया नहिं मैं उसको पिछान, उलटा ही मैंने लिया मान।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान॥
शुभ-अशुभ राग जो दुःख-खान, उसमें माना आनन्द महान।
प्रभु अशुभ-कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय॥

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको जाना मैं दुख स्वरूप।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग॥
इच्छा-निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह।
आकुलतामय संसार-सुख, जो निश्चय से है महा-दुक्ख॥

उसकी ही निश-दिन करी आश, कैसे कटता संसार-पाश।
भव-दुख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान॥
मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहिं दिया ध्यान।
पूजा कीनी वरदान माँग, कैसे मिटता संसार स्वांग॥

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज।
मो उर प्रकट्यो प्रभु भेद-ज्ञान, मैंने तुम को लीना पिछान॥
तुम पर के कर्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सब के एक साथ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत॥

यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुम को बस पिछान।
वह पाता है कैवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान॥
विपदामय पर-पद है निकाम, निजपद ही है आनन्द-धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये
जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

(दोहा)

पर का कुछ नहिं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज-स्वभाव में थिर रहूँ, मेटो सकल विभाव॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु